

वैदिक दर्शन के व्याख्याता महर्षिदयानन्द सरस्वती का दर्शन: एक मूल्यांकन

अनुभा श्रीवास्तवा

महर्षि दयानन्द एक महान दार्शनिक तथा धार्मिक पुरुष थे। उन्होंने दार्शनिक मत को पैतृक सम्पदा के रूप में न पाकर, ज्ञान, स्वविवेक और गहन अध्ययन से तलाशा था। वे घर छोड़ने के उपरान्त अद्वैत मतावलम्बी साधुओं के सम्पर्क में आकर जीव को ही ब्रह्म मानने लगे। इसी अन्तराल में उन्होंने, 'वेदान्तसार और वेदान्त परिभाषा' आदि ग्रन्थों का अध्ययन व चिंतन किया।

डॉ० भवानी लाल भारतीय के शब्दों में –“विरक्त जीवनकाल के प्रारम्भ में वे सन्यासियों में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार शंकरमत के अनुयायी थे। जब गुजरात भ्रमण के समय वे कुछ सन्यासियों के सम्पर्क में आये तो उन्हें विश्वास हो गया कि वे साक्षात् ब्रह्म ही हैं।” इस सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखते हैं- “वहाँ चेतनमठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और सन्यासियों से वेदान्त विषय की बहुत बातें की और 'मैं ब्रह्म हूँ' अर्थात् 'जीव ब्रह्म एक है' ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानंदादि ने मुझको करा दिया।” इसी बीच उन्होंने सदानंद रचित 'वेदान्त सार' आदि ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। परन्तु धीरे-धीरे जब उनका स्वाध्याय, मनन और चिंतन अधिक सूक्ष्म होता गया तो उन्हें शंकर मत की त्रुटियाँ दृष्टिगोचर हुई। आगरा में विद्यारण्यकृत 'पंचदशी' की कथा करते समय जब उन्होंने जाना कि “ईश्वर को भी भ्रम हो जाता है” तब नवीन वेदान्त के प्रति उनकी आस्था समाप्त हो गई।¹ फलतः काशी-शास्त्रार्थ के समय महर्षि दयानन्द ने प्रामाणिक ग्रन्थों की सूची निश्चित कर ली- चार वेद, चार उपवेद, छः वेदांत, छः वेदों के उपांग और मनुस्मृति। वेदों और आर्य ग्रन्थों तथा प्राचीन परिष्कृत भाष्यों के आधार पर वैदिक सिद्धान्तों का निश्चय करके उन्होंने अद्वैत का खंडन प्रारम्भ कर दिया। जो कि उस समय सर्वथा आश्चर्यजनक था, क्योंकि उस समय तक आचार्य शंकर प्रतिपादित अद्वैतवाद का सिद्धान्त ही 'दर्शन' का पर्याय बन चुका था। इस तरह उस समय के अद्वैतवादी दयानन्द अब ईश्वर, जीव और प्रकृति के अनादित्व को स्वीकारने लगे थे। उन्होंने 'अद्वैतमत खण्डन' पुस्तक की रचना करके अद्वैतवाद और मायावाद के मत का खण्डन किया। नवीन वेदान्त प्रतिपादित जीव ब्रह्मैक्य के अभिन्नतामूलक दार्शनिक सिद्धान्त के खण्डन के लिये 'वेदान्तिध्वान्त निवारणम्' नामक पुस्तक लिखी। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदान्तिध्वान्तनिवारण, अद्वैतमत खण्डनम्, भ्रमोच्छेदन, अनुभ्रमोच्छेदन आदि ग्रन्थों में महर्षि दयानन्द ने दार्शनिक सन्दर्भों को प्रकरणवश उल्लिखित करके छः दर्शनों के सूत्रों को उद्धृत करके उनका व्याख्यान और यथापेक्षित विश्लेषण किया है।

वेदों की अभ्रंशनीयता के सन्दर्भ में दयानन्द जी का कहना था कि जो कुछ वेदों की शिक्षा, प्रकृति, ईश्वर के विग्रहों और लक्षणों के अनुकूल है, वह सत्य है, इसके विपरीत गलत है। हमारा विश्वास है कि सत्य धर्म अर्थात् जीवन के सम्यक आचरण के निर्धारण में केवल वेद ही सर्वोपरि प्रमाण हैं। वेदों में जिसका भी निर्देश है, उसे हम सही मानते हैं, जबकि जो कुछ उन्होंने निन्दित किया है, उसे हम गलत मानते हैं। सभी मनुष्यों, विशेषतः आर्यों को वेदों में विश्वास करना चाहिए और इस प्रकार धर्म की एकता का उत्थान करना चाहिए।²

महर्षिदयानन्द के चिंतन की धुरी वेद है। उनकी दृष्टि में वेद अपौरुषेय और ईश्वर प्रणीत है। इनके अनुसार वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। उन्होंने वैदिक धर्म की विकृतियों के विरुद्ध आवाज उठाई और वैदिक धर्म तथा संस्थाओं की स्थापना का प्रयास किया। 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स' के अनुसार दयानन्द के समक्ष समस्या यह थी कि भारतीय धर्म का सुधार किस प्रकार किया जाय, ताकि अन्य राष्ट्रों की उपलब्धियों के प्रति न्याय किया जा सके और धर्म का एक सार्वभौमिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जा सके। इस समस्या का समाधान महर्षि दयानन्द को वेदों का ईश्वरीय ज्ञान घोषित करने में मिला।³

महर्षि ने वेदों के पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार सबका माना। उन्होंने वेदों के प्रचार के लिए लोकभाषा हिन्दी का सहारा लिया। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में विपुल वैदिक साहित्य का निर्माण हुआ है, इसका श्रेय महर्षि दयानन्द को है। महर्षि वेदकालीन भारत को भारतीय इतिहास का स्वर्ण काल मानते हैं। उनका विचार है कि महाभारत के पश्चात् भारत की निरन्तर अवनति हुई है। “जन्म की जाति प्रचलित हो जाने से चार वर्णों की जगह हिन्दू जाति हजारों कल्पित जातियों और उपजातियों में विभक्त हो रही थी। प्रत्येक का खान-पान, शादी-ब्याह, पृथक-पृथक था। इन मामलों में एक जाति या उपजाति का पारस्परिक सम्बन्ध न होने से हिन्दू जाति एक नहीं रह गयी थी और न ही उसका कोई सम्मिलित उद्देश्य बाकी रह गया था। महर्षि दयानन्द ने जन्म की जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करने की शिक्षा दी, क्योंकि यह सर्वथा वेद विरुद्ध थी। उसी के फलस्वरूप अब हिन्दुओं में अन्तर्जातीय सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह होने लगे और इनके प्रचारार्थ अनेक संस्थायें बन गई।”⁴

महर्षि दयानन्द ने वैदिक शब्दों का अर्थ ‘निरूक्त’ के आधार पर किया है, निरूक्त महर्षि यास्क मुनिरचित एक प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें वैदिक शब्दों की विषय व्याख्या की गई है। उनके अनुसार एक-एक शब्द के अनेक अर्थ हैं। शब्द को वास्तविक अर्थ उसकी ‘धातु’ के आधार पर समझा जा सकता है। कहाँ क्या अर्थ अपेक्षित है यह प्रसंग पर निर्भर है। महर्षि दयानन्द ने ‘देव’ शब्द की व्याख्या द्वारा अपने मंतव्य को स्पष्ट किया है। उन्होंने ‘देव’ शब्द के अनेक अर्थ निर्धारित किए हैं। जो दान दे, जो प्रकाशित करे, जो द्योतन करे और जो द्यु स्थान में रहे, उन सबका देव शब्द से बोध होता है। महर्षि दयानन्द ने भारतीय दर्शनों को वैदिक आधार प्रदान करके सूत्रकारों के अभिमत सिद्धान्तों को प्राचीन दार्शनिक परम्परा के साथ सम्पृक्त किया है। मध्यकालीन दर्शनाचार्यों की तरह साम्प्रदायिकता के प्रवाह में न बहकर उन्होंने षड्दर्शन विषयक विश्रृंखलताओं की प्रामाणिक विवेचना करके वैदिक दर्शनों का पुनरुद्धार किया है। इस प्रकार महर्षि दयानन्द त्रैतवादी दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित हुए और भारतीय दर्शनों को उनका प्राचीन स्वरूप तथा सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। उन्होंने षड्दर्शनों के सूत्रों की व्याख्या के सन्दर्भ में पारम्परिक, तर्कपूर्ण, वेद-शास्त्रनिष्ठ व मौलिक चिंतन की प्रक्रिया को अपनाया जिससे कुछ नवीन उत्प्रेक्षणार्थ भी सामने आईं।

महर्षि के अनुसार वेदों में मुख्य रूप से चार विषयों का प्रतिपादन है- विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान। महर्षि के मत से विज्ञान वह है जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर तथा विश्व के समस्त पदार्थों की सही-सही जानकारी प्राप्त करता है। महर्षि के विचारों का समर्थन करते हुए महर्षि अरविन्द ने लिखा था- “स्वामी दयानन्द के इस विचार में कि वेद में न केवल धर्म के किन्तु विज्ञान के सत्य का भी मूल है, कुछ भी कल्पित बात नहीं है। मेरा अपना तो यह भी विश्वास है कि वेद में एक ऐसे विज्ञान की सच्चाई का प्रतिपादन है जिससे वर्तमान जगत सर्वथा अनभिज्ञ है और उस अवस्था में स्वामी दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गंभीरता जताने में कमी ही की है अधिकता नहीं।”⁵

वेदों का दूसरा विषय कर्म अथवा कर्मकांड है, इसका अर्थ है- धर्म का वास्तविक ज्ञान और उसका अनुष्ठान। ‘मुण्डकोपनिषद्’ में कर्म को अमृत की संज्ञा दी गयी और कर्मरत मानव को ब्रह्म ज्ञानियों में सर्वोच्च माना गया है।⁶ वेदों के दो अन्य विषय उपासना और ज्ञान हैं (महर्षि के अनुसार ये विषय भी विज्ञान के अन्तर्गत आ जाते हैं)। महर्षि ने ‘ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका’ में विद्युत, विमान, विद्या, खगोल ज्ञान, भूगोल, गणित आदि के बीज ढूँढ निकाले हैं। उन्होंने अनेक वैदिक मंत्रों की व्याख्या में विज्ञान के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।⁷

महर्षि दयानन्द ने वेदों में एकेश्वरवाद का समर्थन किया है, वे मानते हैं कि ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम ‘ओउम’ है। इंद्र, वरुण, वायु, मित्र, सविता आदि विभिन्न देवता नहीं हैं, वे ईश्वर की ही विविध शक्तियाँ हैं। महर्षि ने ‘सत्यार्थ प्रकाश’ के पहले समुल्लास में वायु, तेज, ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ, मित्र, वरुण आदि ईश्वरवाचक नामों की व्युत्पत्ति दी है। “विख्यात पाश्चात्य विद्वान एच० डी ग्रिसवोल्ड ने लिखा है कि महर्षि शुद्ध एकेश्वरवादी, गैर मूर्तिपूजक और भारतीय ईश्वरवाद की स्थापना करने में सफल रहे जो निश्चय ही एक

उल्लेखनीय उपलब्धि थी।'⁸

महर्षि दयानन्द के अनुसार ईश्वर निराकार है, उसकी कोई आकृति नहीं होती। अतः उसकी कोई मूर्ति नहीं बनाई जा सकती, महर्षि ने इसी आधार पर मूर्तिपूजा का विरोध किया है। आर्य समाज के दूसरे नियम में ईश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-“ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधर, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।”

महर्षि ईश्वर के प्रति अनन्त श्रद्धा और भक्ति रखते थे, किन्तु वह उसे पाषाण प्रतिमा में बंद करना नहीं चाहते थे और न ही वे पाषाण प्रतिमाओं की उपासना करते थे। ईश्वर को वे विश्वास रूप में मानते थे। वेदाज्ञा और ईश्वर भक्ति धर्म के ये दो अंग उनके सार्वजनिक जीवन के आधार थे। दयानन्द ने ईश्वर में आस्था के आधार पर हिन्दुत्व को उसका वास्तविक स्वरूप प्रदान किया। वे इस तथ्य में विश्वास करते थे कि ‘ईश्वर एक ही है’ और जो कुछ इस संसार में है उस सब में ईश्वर व्याप्त है।⁹

महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा की भाँति अवतारवाद का विरोध किया है। वे यह नहीं मानते कि संसार में अधर्म और अत्याचार का आधिक्य होने पर उसका नाश करने के लिए ईश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता पड़ती है। महर्षि दयानन्द ने श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार नहीं प्रत्युत एक महापुरुष माना है।

भारत के छः परंपरागत दार्शनिक सम्प्रदाय हैं- सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, और वेदांत। महर्षि ने ब्रह्मसूत्र के दस सूत्रों के आधार पर ब्रह्म और जीव के भेद को सिद्ध किया है। छहों दर्शनों के सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित कर स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को ठोस आधार प्रदान किया है।

इसी प्रकार महर्षि ईश्वर के समान जीव को भी अनादि तथा नित्य मानते हैं। उन्होंने ईश्वर तथा जीव का संबंध उपास्य-उपासक अथवा पिता-पुत्र का माना है। ईश्वर और जीव में समानता इस कारण है कि दोनों अनादि और नित्य हैं। उनमें असमानता का कारण यह है कि ईश्वर तो सुख-दुख से परे है और सर्वज्ञ है जबकि जीव सुख-दुख से युक्त तथा अल्पज्ञ है। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में जीव शरीर से भिन्न है। शरीर के विनाश के साथ जीव का अंत नहीं होता, गर्मी-सर्दी, शोक-हर्ष की अनुभूति जीव को होती है, शरीर अथवा अंतःकरण का नहीं। महर्षि के चिंतन में शरीर, मन, बुद्धि सब जड़ है, केवल जीवात्मा चेतन है, उनके अनुसार जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। वह अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करता है। जीव को उसके कर्मों का फल ईश्वर देता है, ईश्वर की व्यवस्था में जीव परतंत्र है। महर्षि जीव अथवा आत्मा को अमर मानते हैं। शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं।

मोक्ष अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बंधनरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोगकर पुनः संसार में आना। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि मुक्ति के साधनों का इस प्रकार उल्लेख करते हैं- “परमेश्वर की उपासना करके अविद्या आदि क्लेश तथा अधर्माचरण आदि दुष्ट गुणों की निवारण करके, शुद्ध विज्ञान और धर्मादि शुभ गुणों के आचरण से आत्मा की उन्नति करके जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।”

महर्षि के अनुसार जीव का जन्म-मरण के बंधन से छूट जाना मोक्ष है। उन्होंने मोक्ष-प्राप्ति के लिए ‘शट्क संपत्ति’ का प्रतिपादन किया है। ‘शट्क संपत्ति’ के अन्तर्गत शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान आते हैं। अंतःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में प्रवृत्त करना ‘शम’ है। इन्द्रियों तथा शरीर को बुरे कर्मों से हटाकर अच्छे कर्मों में लगाना ‘दम’ है। दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से दूर रहना ‘उपरति’ है। निंदा-स्तुति हानि-लाभ से ऊपर उठकर मुक्ति के साधनों में लगे रहना ‘तितिक्षा’ है। वेदाशास्त्रों तथा विद्वानों के वचनों पर विश्वास रखना ‘श्रद्धा’ है। चित्त की एकाग्रता ‘समाधान’ है। महर्षि के विचार से जीव की मुक्ति सदा के लिए नहीं होती, वह कुछ समय के लिए ही होती है। मुक्ति का समय पूरा होने पर जीव पुनः जन्म लेने के लिए बाध्य है।¹⁰

भारतीय चिंतन में मनुष्य के तीन गुणों अथवा वृत्तियों की कल्पना की गई है- सत्व, रज, और तम। महर्षि

दयानन्द ने मनुस्मृति के आधार पर इन तीन गुणों की व्याख्या की है। जब आत्मा में ज्ञान हो तब सत्व, जब अज्ञान रहे तब तम और जब आत्मा राग-द्वेष में लिप्त हो तब रजोगुण जानना चाहिए। प्रकृति के ये तीन गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं। जब आत्मा में प्रसन्नता का भाव हो, मन प्रसन्न और शांत हो और वह शुभ कार्यों में प्रवृत्त हो, तब समझना चाहिए कि उसमें रजोगुण प्रधान है। जब आत्मा और मन विषय-भोगों में ग्रस्त हो, उनमें विवेक का भाव न रहे, तब समझना चाहिए कि उनमें तमोगुण की प्रधानता है। सत्व गुण के लक्षण हैं-वेदों का अभ्यास, तप का अनुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इंद्रियों का निग्रह, धार्मिक कार्य और आत्मा का चिंतन।

रजोगुण के मुख्य लक्षण हैं-तीव्र आसक्ति, धैर्य त्याग, असत कर्मों का ग्रहण, विषय भोग, अनावश्यक संचय। तमोगुण के अन्तर्गत लोभ, आलस्य, धैर्य-नाश, क्रूरता, नास्तिकता, याचना और मद्यपान आदि दुष्ट व्यसनों की प्रबलता पाई जाती है।

महर्षि दयानन्द के दार्शनिक और धार्मिक चिंतन की एक विशेषता यह है कि उन्होंने वेद-विरुद्ध सभी मत-मतांतरो का खंडन किया। उन्होंने तंत्र, अद्वैतवाद, शैवमत, वैष्णवमत, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई धर्म और इस्लाम की विसंगतियों तथा कुरीतियों को उजागर किया है। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के 13 वें व 14 वें अध्याय में क्रमशः ईसाई व इस्लाम धर्म की समीक्षा की है, उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए ईसाई व इस्लाम मत का उन्हीं की मान्यताओं के आधार पर खंडन किया। उनकी खंडन प्रक्रिया का उद्देश्य मात्र हिन्दुत्व की सुरक्षा ही था, इस आधार पर उनके दृष्टिकोण को संकीर्ण कहा जा सकता है। लेकिन विद्या वाचस्पति ईसाई एवं इस्लाम के खंडन को विशाल मानवता के प्रतीक रूप में मानते हैं। उनके अनुसार-‘यदि ईसाईयों और मुसलमानों को वैदिक धर्मावलम्बी बनाना था तो निमित्त मात्र होगा, महर्षि मनुष्यमात्र के हितैषी थे।¹¹ महर्षि ने तिलक, छाप, तीर्थयात्रा, गंगा-स्नान आदि धर्म के बाह्याडंबरों की निन्दा की है। इन्होंने ‘जन्मपत्र’ को ‘शोकपत्र’ नाम दिया है, वे जन्म के समय ग्रहों के विचार को भी पाखंड मानते हैं, इन्होंने जादू-टोना, मंत्र, तंत्र, यंत्र आदि को भी ढोंग कहा है। विवाह आदि अवसरों पर कुडली मिलाने को व्यर्थ माना है, इन्होंने कर्म की गति को सच्चा माना है।

इस प्रकार उपयुक्त संक्षिप्त विवरण से यह प्रमाणित हो जाता है कि महर्षि दयानन्द के दार्शनिक मन्तव्यों को ‘त्रैतवादी, यथार्थवादी, अद्वैतवादी दर्शन के नाम से जाना जा सकता है। यद्यपि उन्होंने ब्रह्म से लेकर जैमिनि पर्यन्त विस्तृत साहित्य को प्रामाणिक मानकर उन्हीं मन्तव्यों की पुनः स्थापना की है तथापि अनेकत्र दार्शनिक सन्दर्भों में उन्होंने कतिपय नवीन उत्प्रेक्षणाओं का भी प्रतिपादन किया है। इस दृष्टिकोण से उन्हें वैदिक दर्शन का व्याख्याता पुनरुद्धारक एवं प्रतिष्ठापक मानना सर्वथा उपयुक्त व तर्कसंगत है।

महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म, संस्कृति एवं दर्शन की पुनः प्रतिष्ठा के लिए वेदों और वेदानुकूल वैदिक साहित्य को आधार मानकर प्राचीन एवं शाश्वत मान्यताओं को विश्व के सम्मुख रखा। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था-सत्य का प्रचार। इसके लिए उनका मूल विचार था-‘सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उनका आदि मूल परमेश्वर है।’ उन्होंने ज्ञान-विज्ञान का विषय पारमार्थिक सत्ता ‘ईश्वर’ को माना है। अतः उनका समग्र दर्शन ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के गुण कर्म, स्वभाव तथा उनके स्वरूप की मुक्ति एवं अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति को मानते हैं। इसके लिए उन्होंने अपने साहित्य में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौत, स्मृति, उपनिषद् और दर्शन के सन्दर्भों को उल्लिखित करके दार्शनिक मन्तव्यों की स्थापना की है। जिससे ‘दयानन्द दर्शन’ को ‘विश्व दर्शन’ के परिप्रेक्ष्य में परखा जा सकता है।

सन्दर्भ-

1-आर्य, डॉ० कर्म सिंह ‘महर्षि दयानन्द के दार्शनिक मन्तव्य’ पृ० सं०-15 प्रकाशक-अमृत प्रकाशन, 2-प्रकाश, सत्य ‘ए क्रिटिकल स्टडी आफ द फिलॉस्फी आफ दयानन्द’ अजमेर, 1938 पृ० सं०-454,